International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 346-348

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 346-348
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-07-2021
Accepted: 25-08-2021

डॉ वन्दना रुहेला
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, जे वी जैन कालेज
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ वन्दना रुहेला
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, जे वी जैन कालेज
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

वैश्विक मानवीय समरसता के वैदिक आदर्श

डॉ वन्दना रुहेला

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2021.v7.i5f.1711

सारांश
वर्तमान समय में सामाजिक सौहार्द एक वैश्विक आवश्यकता है । भौतिक प्रगति में नव–नवोत्कर्ष की ओर अग्रसर मानव समाज मानवीय गुणों की ओर से उदासीन तथा करणीय अकरणीय के संदर्भ में विवेक शून्यता के कारण वर्ग संघर्ष या युद्ध की स्थितियों में घिरा हुआ है। आज विश्व में मानव समाज को परस्पर सद्भाव और बंधुत्व की नितांत आवश्यकता है।
आज मानव कल्याण के पोषक वैदिक मंत्रों की उपादेयता निस्संदेह प्रासंगिक है। इस शोधपत्र में वैश्विक दृष्टि से – सर्वात्मभाव, समानता, बंधुत्व एवं मैत्रीभाव, न्याय– भावना तथा समष्टि कल्याण की भावना को केंद्र में रखकर इन्हीं विषयों पर वैदिक चिंतन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कूट शब्द: सर्वात्मभाव, समरसता, मैत्री–भावना, न्याय–भावना, विश्वबंधुत्व, अभय

प्रस्तावना
आधुनिक विश्व नित्य प्रति विभिन्न क्षेत्रों में सतत प्रयोगशीलता से आगे बढ़ता जा रहा है। इस मार्ग में समक्ष प्रस्तुत चुनौतियों के परिणामस्वरूप अनेक विकट स्थितियां भी जन्म ले रही हैं। पृथिवी पर पृथ्वी के निवासी मानवों के प्रति मानव की ही स्वार्थवृत्ति के कारण, परस्पर मैत्री – भाव और करणीय कर्तव्यों के अभाव में युद्ध अथवा अघोषित युद्ध जैसी स्थितियां बन रही हैं। ऐसे परिवेश में वैश्विक मानव–समाज में समरसता की स्थापना की चर्चा आवश्यक हो जाती है।
वैदिक वाङ्मय में वैश्विक समरसता की भावना का पोषण करने वाले उच्च आदर्शों की मानव मात्र में स्थापना के मूल मंत्र निहित हैं। कर्तव्यों के सम्यक् पालन से अधिकार परस्पर स्वतः सुरक्षित होते जाते हैं जिससे, द्वेष की भूमि तैयार नहीं हो सकती। वैदिक संस्कृति में कर्तव्यों को महत्व दिया जाता है।उपनिषदों का सार श्रीमद्भगवद्गीता में सुरक्षित है।
यहां कहा गया है–
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।[1]
कर्तव्य परायणता का अभाव ही मूल रूप से मानव समाज में विवाद और द्वेष का आधार बनता है। कर्तव्यपरायण समाज में अधिकारों के लिए कलह नहीं होती।
वैदिक वाङ्मय में सत्य, अहिंसा, मैत्री एवं बंधुत्व तथा लोक कल्याण अति सुंदर भावनाओं का निदर्शन है। ''मनुर्भव'' वैदिक उद्घोष है जो मानव को मननशीलता पूर्वक कल्याणकारी कर्म करने का मार्ग प्रदर्शित करता है । मानव में समष्टि कल्याण की भावना सर्वात्मभाव, न्याय और समानता आदि गुणों की धारणा से वैदिक वाङ्मय वैश्विक मानवीय समरसता का ही पक्षधर है । इन गुणों का आधान मानव मात्र को गरिमापूर्ण जीवन जीने का आधार प्रदान करता है। वेदों में जो उदात्त गुणों के प्रति आग्रह है वह मनुष्य को सच्चे अर्थों में मानव होने की ओर अग्रसर करता है। भारत ''वसुधैव कुटुंबकम्'' की सार्वभौमिक स्वीकार्यता वाला राष्ट्र है।
वेदों में अनेक स्थानों पर वर्णित लोक कल्याणकारी गुण मानव में कर्तव्यनिष्ठा की स्थापना द्वारा इस भावना को पुष्ट करते हैं। सर्वात्मभाव, परस्पर समानता, बंधुत्व एवं मैत्रीभाव, न्याय –भावना एवं समष्टि कल्याण की भावना आदि ऐसे ही उदात्त गुण हैं जो हर समाज द्वारा धारणीय हैं। वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध इन संदर्भों पर चर्चा अपेक्षित है –
सर्वात्मभाव – वैदिक वाङ्मय मानव में ऐसी दृष्टि का समर्थक है कि व्यक्ति स्वयं में संपूर्ण प्राणियों और सब में स्वयं को देखने लगे–
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति। [3]

ऐसी भावना से युक्त होने पर किसी से घृणा करना संभव नहीं । सामाजिक जीवन का आधार मानवों का परस्पर व्यवहार है। सर्वात्मभाव से जब एकात्मकता की दृष्टि का विकास होगा तो विद्वेष स्वतः समाप्त हो जाएंगे । उपनिषद् वाक्य – ''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ''में भी यही भावना है। श्रीमद्भगवद्गीता में अपनी ही उपमा से सभी को देखना योगी का लक्षण कहा गया है–

आत्मौपमन्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।[4]

जो किसी से द्वेष नहीं करता ऐसा करुणभाव संपन्न प्राणी जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।[5]

समानता की भावना– मानव में सहृदयता समानमनस्कता और विद्वेषशून्यता समानता के मुख्य आधार हैं। वैदिक साहित्य इस समानता की भावना की अनेक सुंदर प्रार्थनाएं हैं। ऋग्वेद का संज्ञान सूक्त [6] और अथर्ववेद का सांमनस्य सूक्त इस भाव का सुंदर निदर्शन है–

''संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'' [7]– इसमें परस्पर एक दूसरे के मन को जानने की प्रार्थना की गई है। ऋषि प्रार्थना करता है कि हम सब मनुष्यों के हृदय समान हों, हम सब कल्याणकारी वाणी बोलें–

यथेमा वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।[7] समानता और सहृदयता का वैदिक आदर्श मानव समाज को परस्पर स्नेह और सद्भाव से युक्त करने को कृत संकल्प है–

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। [9]

गीता में तो समत्व को ही योग कहा गया है–

समत्वं योग उच्यते।[10]

बन्धुत्व एवं मैत्री भाव– विश्व बंधुत्व वैदिक संस्कृति का मूल है। ऋग्वेद में संपूर्ण भूमि को ही बंधु कहा गया है [11], पृथ्वी से तात्पर्य यहां निश्चित रूप से पृथ्वी के समस्त प्राणी हैं । बंधुत्व के साथ ही परस्पर मैत्री–भाव की कामना भी की गई है। अथर्ववेद में सभी दिशाओं को मित्र बनाने की कामना है ।समस्त दिशाओं में सभी से मेरा मैत्री भाव हो–

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।[12]

मानव में परस्पर मैत्री– भाव होगा तो अन्याय, शोषण, विद्वेष और अत्याचार जैसे पीड़ा तत्व स्वयं नष्ट हो जाएंगे, इसीलिए वेदों में मैत्री भावना की कामना की गई है।

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।[13]

मानसिक संकीर्णता का त्याग कर उदार भावना के विकास और विस्तार से मानव समाज परस्पर स्नेह और कल्याण भावना से युक्त होगा। वैदिक ऋषि कहता है

पुमान पुमांसं परि पातु विश्वतः ।[14]

अर्थात् मनुष्य सदैव एक दूसरे की रक्षा एवं सहायता करें।

न्याय भावना – सभी प्राणियों के प्रति सर्वात्मभाव, समानता, कल्याण, बंधुत्व एवं मैत्रीभाव न्याय का ही पोषण करते हैं। वैदिक प्रार्थना है कि जैसे देव धर्म और नीति की मर्यादा के अनुसार हविर्भाग ग्रहण करते हैं वैसे ही हम भी न्यायोचित आचरण करें, अन्याय पूर्वक किसी का भाग न लें।[15] ऋग्वेद में अन्न, धन आदि जीवन उपयोगी सामग्रियों के न्यायपूर्ण विभाजन की भावना दृष्टिगत होती है। १६ धन के भी न्यायपूर्ण भोग के अनेक उपदेश हैं । त्यागभाव से धन का उपभोग समाज में वर्ग–संघर्ष, वैमनस्य आदि को दूर करने की आधारभूमि होने में समर्थ है, इसीलिए ईशावास्योपनिषद में धन के त्याग पूर्ण भोग और अन्य के धन पर कुदृष्टि न रखने का उपदेश है।[16] न्याय के लिए अन्यायकारी को दंडित करना भी अनिवार्य है, यही राजधर्म भी है । ऐसे अन्याय के नाश के लिए वैदिक मंत्र में क्रोध की कामना की गई है– मन्युरसि मन्यु मयि धेहि।

अन्याय के प्रतिकार में क्रोध अनिवार्य है। स्वामी दयानंद सरस्वती का कथन है जहां तक हो सके अन्याय कार्यों के बल की हानि और न्याय कार्यों के बल की उन्नति किया करें। चाहे कितना ही दारुण दुःख क्यों न प्राप्त हो । चाहे प्राण भी चले जाएं किंतु इस मनुष्यपन रूपी धर्म से कभी पृथक न होवे।[17]

समष्टि कल्याण की भावना – सभी के हित की भावना ही समष्टि कल्याण है। यही भावना मानव–समाज को उन्नत कर सकती है, स्नेह भाव उत्पन्न कर सकती है जिससे समाज शोषण से मुक्त हो । वैदिक धर्म का मूल सिद्धान्त है'' समष्टि भावना''। अधिकतर प्रार्थनाएं बहुवचन मैं होना इसकी पुष्टि करता है–

यद् भद्रं तन्न आसुव।[18]

इसी प्रकार

नः शर्म यच्छ।[20]

अर्थात् हे प्रभु ! हम सबका कल्याण करो। सभी के कल्याण में व्यक्ति का कल्याण निहित है। मानव हृदय की इससे उत्कृष्ट भावना क्या होगी कि मैं मनुष्य मात्र के प्रति सद्भावना धारण करूं उन्हें देखूं या न देखूं।[21]

अभय – मनुष्य के जीवन के उत्तम विकास हेतु अभय का महत्व कैसे विस्मृत हो सकता है ? अभय मन की वह वृत्ति है, जिसके द्वारा मानव निर्बाध हो सत्कार्य में प्रवृत्त हो । सच्चा न्याय यह है कि पापाचरण से मानव को भय हो और सत्कार्य में अभय । अथर्ववेद का ऋषि अपने प्राणों को भयभीत न होने और निर्भीकता का परामर्श देता है–

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीते न रिष्यतः।
एवा मा प्राण मा बिभेः।
यथा भूतं च न बिभीतो मरिष्यतः
एवा मा प्राण मा बिभे।[22]

वैदिक वाङ्मय निर्भीक हो परस्पर मैत्री भाव की प्रेरणा देता है । वैदिक ऋषि मानव उन्नति के मूल अभय की प्रार्थना करता है–

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः ..[23]

अतः कहा जा सकता है की वैदिक वाङ्मय में प्रदर्शित उत्तम मानवीय गुणों की मनुष्य मात्र में स्थापना, मानव को वास्तविक अर्थों में मानव बनाने की आधारशिला है।आज जो मनुज स्वार्थांध होकर कर्तव्यच्युत हो रहा है इस सम्यक् दृष्टि से सन्मार्ग पर आ सकता है। वैदिक मानवीय आदर्शों यथा सर्वात्मभाव, समष्टि –कल्याण, बंधुत्व एवं मैत्री, न्याय भावना, समानता, अभय इत्यादि का अनुशीलन तथा इन्हें आत्मसात् करना विश्व के कल्याण का मार्ग है। मानवीय समाज में अन्याय और शोषण इत्यादि को दूर कर ऐसे समाज की सृष्टि करने में समर्थ है जो सत्यं शिवं सुंदरम् का यथार्थ स्वरूप है। उत्तम आचार के सुष्ठु अनुपालन से मानव समाज की विषमताएं दूर हो सकती हैं। ''मनुर्भव'' के उपदेश की सार्थकता में ही मानव कल्याण है तथा इसी से वैश्विक समरसता का सुंदर आदर्श भी साकार हो सकेगा।

संदर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता १८ / ४५
2. ऋग्वेद १० / ५३ / ६
3. यजुर्वेद ४० ६ ६
4. श्रीमद्भगवद्गीता ६ / ३२
5. तदेव १२ / १३ अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्र करुण एव च।
6. ऋग्वेद १० / १९२
7. तदेव १० / १११ / २
8. यजुर्वेद २६ / २
9. अथर्ववेद ३ / ३० / १
10. श्रीमद्भगवद्गीता २ / २८

11. बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ऋग्वेद १ / १६४ / ३३
12. अथर्ववेद १६ / १५ / १६
13. तदेव ३६ ६ १८
14. ऋग्वेद ६ / ७५ ६ १४
15. तदेव १० ६ १११ / २–३
16. तदेव १० ६ ४८ / ११
17. ईशावास्यमिदं सर्वं च यत्किञ्च जगत्यां जगत। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। ईशावास्योपनिषद् / १
18. सत्यार्थ प्रकाश उप पृ ५०५
19. यजुर्वेद ३० / ३
20. ऋग्वेद १ / ११४ / १०
21. यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मां सुमतिं कृधि। अथर्ववेद १७ / १ ६ ७
22. तदेव २ / १५ १–६
23. तदेव १६ / १५ / ६